पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा ७२
लंदन हॉल प्रवचन ५, ता. ११-०७-१९८२

यह एक समयसारजी नामक शास्त्र है, परमागम शास्त्र है, जो भगवान महावीर द्वारा उपदेशित और गौतम गणधर द्वारा ग्रहित (है)। और उन आचार्य की परंपरा में आज से दो हजार वर्ष पहले एक समर्थ आचार्य भारत में हुए; जो जमीन से चार अंगुल ऊपर चलते थे। ऐसी उन्हें ऋद्धि प्रगट हुई थी। उन्होंने शास्त्र की रचना करते हुए एक समयसार नामक परमागम शास्त्र रचा है। जिसमें शुद्धात्मा का स्वरूप क्या है वह मुख्यरूप से जिसमें वर्णित है।

नवतत्त्व का वर्णन करते-करते आचार्य भगवान फरमाते हैं - नवतत्त्व के नाम हैं - जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। वे आत्मा के परिणाम के सब नाम हैं। आत्मा है वह अनादि-अनंत है। किसी संयोग से जिसकी उत्पत्ति होती नहीं है। और किसी संयोग का वियोग हो तो आत्मा का नाश होता नहीं है। ऐसा अनादि-अनंत ज्ञान और आनंदमय आत्मा देहदेवल में देह से भिन्न, ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म, उनसे भी अंदर भिन्न और वर्तमान पुण्य-पाप की जो वृत्ति उत्थान होती है, लगन (उससे भी भिन्न)। क्षण में पाप के परिणाम, क्षण में पुण्य के परिणाम, उनसे भी आत्मा अंदर में एक चैतन्यमूर्ति आत्मा भिन्न विराजमान है, शुद्ध, अविनाशी, शाश्वत। ऐसे शुद्धात्मा को जाने बिना, उसको श्रद्धा में लिए बिना, उसका अनुभव किये बिना जगत के प्राणी चारगति में एकांत दुःख को भोगते हैं। चारों गति दुःखरूप हैं। किसी गति में सुख नहीं है।

गति अर्थात् परिणति। परिणति अर्थात् शुभ और अशुभभाव की जो परिणति, उसे गति कहने में आता है। वह गति दुःखरूप है। और पंचमगति, सिद्धगति वह सुखरूप है। ऐसे पूर्णानन्द मोक्ष की प्राप्ति जीव को किसप्रकार हो उसका इसमें वर्णन है। एक समयमात्र भी अपना शुद्धात्मा, उसका स्वरूप अंदर में क्या है? उसका उसने अनुभव किया नहीं और उसे समझने की दरकार भी वास्तव में की नहीं।

सभी बाहर के पदार्थ समझने में रुका परंतु एक **हुँ कोण छु? क्याथी थयो? शु स्वरूप छे मारुं खरुं? कोना संबंधे वळगणा छे? राखु के ए परहरु?** (राजपद, अमूल्य तत्त्वविचार)। ऐसे निज शुद्धात्मा के भान बिना आत्मा अनादिकाल से अज्ञानभाव से दुःखी हो रहा है। उस दुःख के नाश का उपाय जब आत्मा आत्मा से आत्मा को जाने - अनुभवे, आत्मा को आत्मा से जाने - अनुभवे तब उसे आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन कहने में आता है। वह **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थसूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १) है, मोक्ष का मार्ग है। पुण्य-पाप का परिणाम बंध का मार्ग है, और सम्यग्दर्शन आदि, आत्मा आश्रित शुद्ध वीतरागी परिणाम जो प्रगट होते हैं वो मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग कहो या आत्मिक सुख का मार्ग कहो, वह एकार्थ वाचक शब्द है। एक ही जिसका अर्थ है, मोक्षमार्ग कहो या सुख का मार्ग कहो।

ऐसा आत्मिक सुख अनादिकाल से आज तक अज्ञानी प्राणी ने उस सुख का स्वाद लिया नहीं है। चाहते हैं सुख, सर्व प्राणी सुख को चाहते हैं। कोई भी प्राणी दुःख को चाहता नहीं है। फिर एकेन्द्रिय जीव हो, दो इन्द्रिय जीव हो, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी (सभी सुख को चाहते हैं)। ऐसे जो जीव हैं, जो जीवत्व शक्ति से जी रहे हैं और व्यवहार से दस प्रकार के प्राण से जो जीते हैं, ऐसे आत्मा अनंत हैं। सर्वज्ञ भगवान ने छह द्रव्य कहे हैं। जीव अनंत हैं। पुद्गल परमाणु अनंतानंत हैं। एक धर्मास्तिकाय नाम का द्रव्य - पदार्थ है। एक अधर्मास्तिकाय है। एक आकाश द्रव्य है। असंख्यात् कलाणु हैं। ऐसे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने छह द्रव्य कहे हैं।

द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसमें अनंत गुण होते हैं। एक-एक द्रव्य में अनंत गुण हैं। और उन गुणों के परिणाम प्रगट होते हैं उसको पर्याय कहने में आता है। इसप्रकार गुण और पर्याय के समुदाय को, भगवान वीतराग देवाधिदेव सर्वज्ञ परमात्मा उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसे जाति अपेक्षा से छह द्रव्य हैं। जाति अपेक्षा से छह, संख्या अपेक्षा से अनंत पदार्थ, द्रव्य हैं। सर्वज्ञ भगवान को जब केवलज्ञान प्रगट होता है तब एक समय में भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनलोक - उर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक (का) एक समयमात्र में उनको ज्ञान होता है। और केवलज्ञान में जो प्रत्यक्ष पदार्थों के स्वरूप को जाना, देखा, वह वाणी छूटती है दिव्यध्वनि, तब वो छह द्रव्य देखे वो वाणी में आये।

और उस जीव के नौ प्रकार के क्रम से परिणाम होते हैं। उसे भगवान नवतत्त्व कहते हैं, वह पर्याय है, और वह परिणाम है, दशा है, हालत है। और उसके पीछे, उसके साथ-साथ रहता हुआ एक ध्रुवतत्त्व, परमात्मतत्त्व, जीवतत्त्व, सामान्यतत्त्व - (ऐसा) जो जीव, उसमें सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजसुख, सहजवीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व ऐसी-ऐसी अनंत शक्तियों का पुंज अंदर में आत्मा विराजमान है। परंतु देह दृष्टिवाले को, देह के प्रेमवाले को, संयोग के प्रेमवाले को, पुण्य और पुण्य के फल की रुचिवाले को यह अंदर आत्मा, भगवान विराजमान है (उसे नहीं देखता) कि जिस भगवान के दर्शन करने से धर्म होता है। प्रतिमा वह भगवान है, उसके दर्शन करने से शुभभाव होता है, पुण्य बँधता है। और अंदर में भगवान आत्मा विराजमान है शक्तिरूप से, उसके दर्शन करने से उसे भव का अंत होता है और आत्मिक सुख उस ही समय उसे प्रगट होता है। ऐसे एक शुद्धात्मा का स्वरूप क्या है? वह जगत के जीव जानते नहीं हैं।

वे जगत के जीव शुद्धात्मा के स्वरूप को जानें - अनुभवें और सुख की प्राप्ति करें उस हेतु से इस शास्त्र की रचना हुई है। पूरे जगत के प्राणी सुबह से शाम तक जो कुछ प्रयत्न करते हैं वह केवल सुख के हेतु करते हैं। कोई भी प्रयत्न जीव करे, एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय, वो कोई दुःख की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न करता नहीं है। सभी, जगत के सभी जीव प्रयत्न तो करते हैं परंतु किसके लिए करते हैं? पुरुषार्थ किसके लिए करते हैं? केवल सुख के लिए प्रयत्न, पुरुषार्थ करते हैं। परंतु जगत के जीवों को ज्ञान नहीं है कि 'सुख कहाँ है? और उस सुख की प्राप्ति मुझे कैसे हो?' उसका उपाय जानते नहीं हैं। सुख आत्मा में है और उस सुख की प्राप्ति, आत्मा का अंतर्ध्यान करने पर, आत्मा में एकाग्र होने पर आत्मा को सुख का स्वाद आता है। सुख आत्मा में है। सुख संयोग में नहीं है। सुख मोटर, बंगला, धन, धान्य, परिवार, कुटुंब, उसमें सुख नहीं है। वह तो दूर रहो।

अब उससे भी आगे यहाँ एक अधिक सूक्ष्म बात आचार्य भगवान समझाते हैं कि, तुम भव्य आत्माओं तुम हमारे वर्ग और जाति के हो परंतु तुम तुम्हारे स्वरूप को भूल गये हो। तुम्हारे स्वरूप को तुम जानते नहीं, पहचानते नहीं। क्या तुम्हारा स्वरूप है? तुम देह को आत्मा मान बैठे हो। देह आत्मतत्त्व नहीं है। देह है वह पुद्गल की एक रचना है, यह अनंत परमाणुओं का पिंड है। यह जो दिखता है इन्द्रियज्ञान के द्वारा, इन्द्रियज्ञान द्वारा रूपी पदार्थ दिखते हैं। अरूपी आत्मा अंदर में है वह इन्द्रियज्ञान के द्वारा जानने में नहीं आता। उसे जानना हो तो एक अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा जाना जा सकता है। वर्तमानकाल में पंचमकाल में छोटे, बड़े, भाई, बहिन, माता वे आत्मदर्शन कर सकते हैं। ऐसे आत्मा के दर्शन से उसे सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए जिसप्रकार (मृग को) पानी की तृषा लगती है और वह तृषातुर हुआ मृग मरीचिका जल (मृगजल) देखकर उसके पीछे दौड़ता है परंतु पानी का एक बिन्दु भी मिलता नहीं। पानी का बिन्दु तो मिलता नहीं अपितु ठंडी हवा भी आती नहीं। और ऐसे के ऐसे वह मृगजल के पीछे, मरीचिका के पीछे वह मर जाता है, मृत्यु की शरण पाता है।

उसीप्रकार अज्ञानी प्राणी पाँच इन्द्रिय के विषय, वह पाँच इन्द्रिय के विषय की तरफ झुक रहा है, ढल रहा है। पाँच इन्द्रिय के जो पाँच विषय हैं -स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द, वे पाँच इन्द्रिय के पाँच विषय भगवान परमात्मा ने फरमाये हैं, उनकी तरफ वह झुकता है। निरंतर उनकी तरफ ढल रहा है, झुक रहे हैं। उसमें से कुछ सुख मिलेगा, इसमें से मिलेगा, इसमें से मिलेगा, इसमें से मिलेगा, इसप्रकार सुख के लिए (चारों ओर झपट्टा मारता है)। सुख है अंदर में। अंदर में ढूँढता नहीं है, विश्वास नहीं आता कि अंदर आत्मा में सुख भरा है। विश्वास नहीं आता क्योंकि उसे अनुभव नहीं हैं, और दूसरा अनुभवी पुरुष का योग भी पंचमकाल में, बहुत विरल होता है। उस अनुभवी पुरुष के योग बिना यह अंदर अनुभव की बात कोई बता नहीं सकता है। उसका भी विरल है योग। उस प्रकार के जीव का पुण्य (कम हो) गया।

चतुर्थकाल में तो ज्ञानी का योग भी होता है और तीर्थंकर का योग भी होता है। वर्तमानकाल में ज्ञानी का योग होना बहुत दुर्लभ है। कदाचित् ज्ञानी का योग हो जाये तो उसकी पहचान होना दुर्लभ है। और कदाचित् (ज्ञानी की) पहचान हो जाये तो उनकी देशनालब्धि सुनने का भाव आये वह भी दुर्लभ है। कभी देशनालब्धि सुनने का भाव आये तो उनकी कही हुई बात समझने जैसी है, ऐसी रुचिपूर्वक उसका वह झुकाव उसकी तरफ जाता नहीं है। इसप्रकार उसे शुद्धात्मा के स्वभाव की बात (विरल है)। विभाव की बात सभी करते हैं, स्वभाव की बात करनेवाले तो कोई विरले ज्ञानी धर्मात्मा (ही) होते हैं। विभाव की बात सभी करते हैं कि पाप से दुःख होता है और पुण्य से सुख होता है। सौ प्रतिशत झूठी बात है। जैसे पाप का परिणाम दुःखरूप है वैसे पुण्य का परिणाम भी, कषाय की मंदता, कषाय की जाति होने से उसका फल दुःख है। रमणीकभाई! जरा बात समझने जैसी है। आगे बैठे हैं वे रमणीक भाई न? रमणीकभाई।

मुमुक्षु: समझ में आया वह लिख लेता हूँ।

पू. लालचंदभाई: हाँ, जरूर करो और फिर प्रश्न करना, खुशी से। विचार करके प्रश्न जरूर करने जैसा है। यह तो एक अपूर्व बात है। जो अपूर्व बात मुझे भी मिली नहीं थी जन्म से। वह कोई मेरे

भाग्य के योग से मुझे इन एक महापुरुष का, सोनगढ़ के संत का योग हुआ, और उनके परिचय से इस शुद्धात्मा का स्वरूप क्या है? और उसका अंदर अनुभव कैसे हो? और अनुभव करने पर संसार का अंत कैसे आये? - यह बात मैंने उनके पास से सुनी है। मुझ पर करुणा करके उन्होंने मुझे कही है। मुझे अर्थात् वयक्तिगत तो नहीं कहते थे परंतु सबको प्रवचन में कहते थे।

ऐसे आत्मा की बात सुननी भी दुर्लभ और सुने तो उसके ऊपर विचार करने का टाइम भी जीव को नहीं। चौबीसों घंटे संकल्प और विकल्प, संकल्प और विकल्प, यह करना है और वह करना है। यह पदार्थ प्राप्त करना है और उस पदार्थ को भोगना है। पाँच इन्द्रियों के विषयों को प्राप्त करना है सुख के लिए और फिर पाँच इन्द्रिय के विषय को भोगना है। वह पाँच इन्द्रिय के विषय का भोग वह दाहज्वर है। अंदर जलन उत्पन्न होती है, आकुलता उत्पन्न होती है, आत्मा को। कहीं उसमें शांति नहीं है। शांति अंदर में है। अंदर शोधने वाले को शांति मिलती है।

छह सौ और आठ जीव, छह महीने और आठ समय में पूरे लोक में से, मनुष्य लोक में से छह सौ आठ जीव निरंतर छह महीने और आठ समय में सिद्धगति को प्राप्त करते हैं। छह महीने और आठ समय में continuously (निरंतर), अनादिकाल से ऐसा चालू है, अनंतकाल रहेगा। फिर भी (संसारी) जीव की संख्या खत्म होनेवाली नहीं है। प्रश्न तो होता है न कि तो तो फिर इस संसार का अभाव हो जायेगा? अरे भाई! संसार का अभाव होनेवाला नहीं है। उसने बात सुनी नहीं है। वो कंदमूल में, आलू की कणिका या लहसन की एक कणिका, उसके अंदर, एक कणिका के अंदर अनंत जीव हैं। उसके (अनंतवें भाग के) जीव सिद्ध परमात्मा की दशा को प्राप्त हुए हैं। संसार राशि में इतने जीव हैं, कि जब सर्वज्ञ भगवान को गौतम गणधर ने जैसे पूछा ऐसे भावी तीर्थंकर को जब पूछेंगे कि इतने सिद्ध हो गये तो इस संसार में (जीव) समाप्त हो जायेंगे या नहीं? तब उत्तर आयेगा कि कंदमूल की एक कणिका के अंदर अनंत जीव हैं और उसकी अपेक्षा (अनंतवें भाग के) जीव सिद्ध परमात्म दशा को प्राप्त हुए हैं। किसी काल में संख्या घटती नहीं है, इतनी जीव राशि है।

ऐसे इस आत्मा में सुख है और (वह सुख) कैसे प्राप्त हो? ऐसा शिष्य ने एक प्रश्न किया। बहत्तर नंबर की गाथा है, कर्ता-कर्म अधिकार की। उसमें शिष्य प्रश्न करता है, प्रभु! इस दुःख की निवृत्ति कैसे हो? अर्थात् क्या आत्मा के **ज्ञानमात्रसे ही बंधका** अभाव होता है? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। शास्त्रज्ञान नहीं। शास्त्रज्ञान तो अनंतबार किया जीव ने। शास्त्रज्ञान वह ज्ञान नहीं है। शास्त्रज्ञान वह भगवान मना करते हैं कि शास्त्रज्ञान वह ज्ञान नहीं है। जब शास्त्रज्ञान वह ज्ञान नहीं है तो यह दुकान का और जड़ का ज्ञान तो ज्ञान कहाँ है? झवेरचंदभाई? ये कपड़े का ज्ञान वह ज्ञान नहीं है, क्योंकि ज्ञान कपड़े का नहीं है। ज्ञान जड़ का नहीं है, ज्ञान आत्मा का है। वह ज्ञान अंतर्मुख होकर जब जिसका ज्ञान है, वह ज्ञान उसे जाने तब उसको इंद्रियज्ञान रुक जाता है, ध्यान के काल में और एक अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होकर आत्मदर्शन होता है। तब से धर्म की शुरुआत होती है। शुद्धात्मा के प्रत्यक्ष अनुभव से धर्म की शुरुआत होती है, अनुभव से वृद्धि होती है और अनुभव से ही पूर्णता प्रगट होती है। आदि, मध्य, अंत में शुद्धात्मा के अनुभव से धर्म की शुरुआत होती है।

'क्या आत्मा का अनुभव? क्या आत्मा का स्वरूप?' जगत के जीवों को जानने को मिलता नहीं

है। अभी भारत में तो कहीं-कहीं किसी कोने में जानने को मिलता है परंतु ये लंदन में और उसमें भी यह imitation (नकली), जगमगाहट, झूठा सुख, सुखाभास, सुख का आभास (है), सुख नहीं है। ऐसा कहें कि ये फलाने भाई बहुत सुखी दो-पाँच करोड़ की पार्टी है। सर्वज्ञ भगवान ना कहते हैं। आहाहा! सुख तो अंदर आत्मा में है। लक्ष्मी में सुख नहीं है वह तो जड़ है। लक्ष्मी से मुझे सुख होता है ऐसी मान्यता, मिथ्या-मान्यता वह तो आस्रवतत्त्व है। उसमें कहीं सुख नहीं है। उससे आगे यहाँ कहते हैं कि पुण्य के परिणाम तुझे कदाचित् आये, वे पुण्य के परिणाम भी दुःखरूप हैं। वह तीसरा बोल हमें लेना है, आज।

भेदज्ञान का प्रकार समझाते हैं। कि चैतन्यमूर्ति आत्मा, इस जड़ ऐसे देह से भिन्न है, अतः देह को तू अपना मत मान। देह का वियोग हो जायेगा और आत्मा चला जायेगा। अतः दो तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। देह तेरा नहीं है, तेरा तो अंदर ज्ञान तेरा है। तू ज्ञानमय है और देहमय नहीं है। ऐसा अंदर में पुण्य और पाप की वृत्ति का जो उत्थान होता है, वह सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि वह मैल है। पाप के परिणाम तो मलिन भाव अपवित्र हैं, परंतु पुण्य के परिणाम दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम वह भी सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा फरमाते हैं कि भाई वे मलिनभाव हैं। जैसे पानी के ऊपर सेवाल है ऐसे ये पुण्य और पाप के परिणाम भी मलिन और अपवित्र भाव हैं। उनसे भिन्न भगवान आत्मा पवित्र अंदर में विराजमान है, उसे तू दृष्टि में ले, उसे लक्ष में ले, और पुण्य-पाप का लक्ष छोड़ दे। पुण्य-पाप छोड़ दे ऐसा नहीं, पुण्य-पाप का लक्ष छोड़ दे। देह छोड़ दे ऐसा नहीं (परंतु) देह का लक्ष छोड़ दे। देह छोड़ने का उपदेश नहीं है, आठ कर्म छोड़ दे ऐसा नहीं, पुण्य-पाप छोड़ ऐसा नहीं परंतु देह में आत्मबुद्धि छोड़ दे। कर्म से लाभ माना है वह छोड़ दे और पुण्य के परिणाम वे धर्म का कारण हैं ऐसी मिथ्या मान्यता को छोड़ दे। उनका लक्ष छोड़ दे। पदार्थ भले ही रहें परंतु पदार्थ मेरे हैं ऐसे ममत्व के परिणाम को तू छोड़ दे। उनका त्याग कर।

परंतु अब त्याग कैसे करना? कि ग्रहणपूर्वक त्याग है। सर्वज्ञ वीतराग भगवान के शासन में त्याग की बात है परंतु ग्रहणपूर्वक त्याग। कुछ ग्रहण करने पर कुछ विभावभाव छूटता है। जैसे कि सम्यग्दर्शन ग्रहण होने पर मिथ्यात्व के, मिथ्या-मान्यता के परिणाम छूट जाते हैं। ऐसे जैसे-जैसे वीतरागभाव का अंतर्मुख होकर ग्रहण होता है वैसे-वैसे उतने प्रमाण में राग का त्याग होता है। ऐसे वीतरागभाव का विशेष, विशेष ग्रहण होते-होते-होते, राग का अभाव होते-होते एक समय ऐसा आता है कि परिपूर्ण वीतराग दशा प्रगट होती है।

वह यहाँ आचार्य भगवान बहत्तरवीं गाथा में फरमाते हैं कि **आस्रव**। अभी (तो) नवतत्त्व के नाम भी नहीं पता। नहीं तो नवतत्त्व की बात है, नवतत्त्व की परिधि में यह सब रहता है। नवतत्त्व (से) बाहर कुछ कहना नहीं हैं। कि जो नवतत्त्व सर्व मान्य हैं, नवतत्त्व सर्व सम्मत हैं। नौ के दस तत्त्व नहीं, नौ के आठ नहीं, अनादि-अनंत (हैं)। ऋषभदेव भगवान के समय में भी उनकी दिव्यध्वनि में नवतत्त्व आये। भगवान महावीर की वाणी में भी नवतत्त्व का स्वरूप आया है। परंतु उन नवतत्त्व में क्या उपादेय है, क्या हेय है और क्या ज्ञेय है? उसका विचार एक समयमात्र भी आत्मा करता नहीं है। अपने घर की बात, परंतु वह जैन हुआ किंतु नवतत्त्व का स्वरूप भगवान ने क्या कहा वह समझने की दरकार भी

करता नहीं है।

उसमें, नवतत्त्व में एक आस्रवतत्त्व है। जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व। पुण्यतत्त्व, पापतत्त्व वे दो मिलकर भगवान आस्रवतत्त्व कहते हैं। आस्रव अर्थात् आगंतुक नये-नये भाव। आस्रव नये-नये आगंतुक भाव, मेहमान, आकर चले जायें, आकर जायें, आकर जायें। ऐसे आस्रव (कि) जिनके निमित्त से आठ प्रकार के कर्म का बंध जीव को होता है। ऐसे जो आस्रव उन आस्रवों के दो भेद, पुण्य आस्रव और पाप आस्रव। पाप आस्रव है वह लोहे की बेड़ी है और पुण्य आस्रव है वह सोने की बेड़ी है। परंतु दोनों बंध साधक भाव हैं। दोनों का फल - जीव बंधता है। पाप से भी बंधता है और पुण्य के परिणाम से भी जीव बंधता है, जीव छूटता नहीं है।

ऐसे आस्रव भगवान ने कहे उसके दो भेद, पुण्य आस्रव और पाप आस्रव। अब उसका लक्षण बताते हैं कि उसका लक्षण क्या है? दो लक्षण तो कहे। एक अपवित्र अशुचि लक्षण कहा, दूसरा आस्रव का लक्षण जड़ कहा। चेतन तो स्व-पर को जानता है। परंतु आस्रव, पुण्य-पाप के परिणाम, परिणाम परिणाम को भी ना जाने और परिणाम परिणामी ऐसे आत्मा को भी जाने नहीं। इसलिए उसे जड़ और अचेतन कहा। दो बोल हुए। अब आज तीसरा विशेषण है। आस्रव का विशेषण अर्थात् आस्रव का लक्षण। स्व और पर उसके लक्षण जानकर स्व को स्वपने ग्रहण करना और पर को परपने दृष्टि में से छोड़ना। रुचि छोड़ देना। ऐसा भेदज्ञान करने से धर्म होता है।

तो **आस्रव आकुलताके उत्पन्न करने वाले हैं**, आकुलता अर्थात् एकांत दुःख, दुःख को (उत्पन्न करनेवाले) उसका फल दुःख है। पाप के परिणाम - हिंसा, झूठ, चोरी, आदि जो पाप के परिणाम (हैं) उनका फल तो दुःख है, वर्तमान में भी दुःख और भावीकाल में भी दुःख के निमित्त मिलें ऐसा कर्म का बंध होता है। और पुण्य के परिणाम वर्तमान में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम, भगवान की पूजा का भाव, यात्रा का भाव, भगवान के दर्शन करने का भाव वे सब परिणाम हैं, उन परिणाम को भगवान पुण्यतत्त्व कहते हैं। वे पुण्य के परिणाम भी आकुलता को उत्पन्न करनेवाले हैं। आत्मिक शांति बिल्कुल उसमें प्राप्त होती नहीं है। **आस्रव** अर्थात् पुण्य और पाप के आत्मा के परिणाम वे विभाव परिणाम हैं, वे स्वभाव भाव नहीं हैं। वीतरागता है वह स्वभावभाव है। और ये पुण्य और पाप के परिणाम, बहिर्मुख परिणाम, पराश्रित परिणाम, जड़ आश्रित परिणाम, कर्म आश्रित परिणाम, वे दो प्रकार के परिणाम परमात्मा ने कहा कि तुझे दुःखरूप हैं।

वे **आकुलताके** अर्थात् दुःख के **उत्पन्न करने वाले हैं**, अनादि-अनंत जब-जब नवतत्त्व का स्वरूप सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आता है तब-तब यह बात आती है कि आस्रव दुःख के कारण हैं, आस्रव सुख के कारण नहीं हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष वे आत्मा के परिणाम वे सुख के कारण हैं। और पुण्य-पाप, आस्रव और बंध वे आत्मा के विकृत परिणाम, विकारी परिणाम, विभाव परिणाम, कषाय के परिणाम - वे आत्मा को वर्तमान दुःख का कारण (हैं) और परंपरा से भी उसके निमित्त से जो कर्म का बंधन होता है और उसमें उदय आता है और उदय में जुड़े तो उसे दुःख का निमित्त कारण कहने में आता है। परिणाम को वर्तमान दुःख का कारण कहा जाता है और परिणाम के निमित्त

से कर्म बंधते हैं उन्हें दुःख के निमित्त कहने में आता है।

वर्तमान किसी भी प्रकार का परिणाम हो वह फल के बिना नहीं होता। परिणाम का फल आता है, आता है और आता है। पाप के परिणाम का फल भी वर्तमान में आता है, पुण्य के परिणाम का फल भी वर्तमान में आता है, (दोनों) आस्रवों का। और संवर और निर्जरा; संवर अर्थात् शुद्धात्मा का अनुभव, स्वानुभव, अनुभूति उसका फल भी वर्तमान में आता है; निर्जरा अर्थात् शुद्धि की वृद्धि, वीतरागता की वृद्धि हो उसका फल अनाकुल आनंद वर्तमान में आता है। और मोक्ष, परिपूर्ण आनंद की प्राप्ति ऐसे जो परिणाम, उसका फल भी वर्तमान में आता है। परिणाम फल बिना नहीं होता। परिणाम का फल होता है, होता है और होता ही है। जैसे-जैसे जीवों के परिणाम, वैसे-वैसे फल को वह वर्तमान में भोगता है और निमित्तपने वह भविष्य में लक्ष करे तो भोगता है।

आस्रव आकुलताके उत्पन्न करने वाले हैं, तो ऐसा होता है कि अब इस पाप को छोड़ना और पुण्य को छोड़ना तो करना क्या? छोड़ने की, लेने की, रखने की कोई बात नहीं है। उसका जैसा स्वरूप है उसके स्वरूप को जानकर, उसका लक्ष छोड़कर, पाप और पुण्य के परिणाम का लक्ष छोड़कर, पुण्य का प्रेम छोड़कर, पुण्य के परिणाम की रुचि छोड़कर, पुण्य फल की रुचि छोड़कर, अंतर एक आत्मा भगवान विराजमान है, उसका रुचिपूर्वक अवलंबन लेने पर उसे धर्म की शुरुआत होती है। करने योग्य तो यह है। आत्मा को पहचानने योग्य है। आत्मा को पहचाने बिना सभी क्रिया संसार के फल का कारण हैं।

एक आत्मा का भान नहीं है, आत्मा को पहचाना नहीं। मेरा वास्तविक, original (वास्तविक) क्या स्वरूप है? भाई! यह तो स्वांग है, यह मनुष्य की पर्याय वह तो स्वांग है, (ये) कोई आत्मा का स्वभाव नहीं है। आठ कर्म का बंध होता है वह स्वांग है। पुण्य-पाप के परिणाम का उत्थान होता है वह भी स्वांग है, वह तो निकल जाता है। जब मोक्ष पंचमगति प्रगट होती है तब पुण्य-पाप के परिणाम छूट जाते हैं, संयोग, आठ कर्म का भी अभाव होता है और देह का भी वियोग होता है। अतः ज्ञान का कभी वियोग नहीं होता। ज्ञान वह आत्मा की स्वभावभूत क्रिया है। आत्मा को जानना, आत्मा को अनुभवना ऐसा जो आत्मज्ञान वह आत्मा की स्वभावभूत क्रिया है। वह स्वभावभूत क्रिया सुखरूप है और पुण्य-पाप की बहिर्मुख क्रिया वह दुःख का कारण है ऐसा जानकर उसका लक्ष छोड़कर आत्मा का लक्ष करने जैसा है।

आस्रव आकुलताके, दुःख के **उत्पन्न करने वाले हैं इसलिये दुःखके कारण हैं**। जो कोई परिणाम होता है उस परिणाम का फल है। फल क्या है? कि उसका फल दुःख है। **दुःख के कारण हैं**, वे आत्मा को आत्मिक सुख के कारण नहीं हैं। कदाचित् शुभभाव करे कर्ताबुद्धि से (तो) पुण्य बंधता और बाहर का कुछ दिखावा अच्छा हो, परंतु उसमें कोई सुख नहीं है। वे सभी पदार्थ यहाँ पड़े रहते हैं और स्वयं परलोक में चला जाता है। या स्वयं जीवित हो और पुण्य समाप्त हो जाये तो संयोग का वियोग हो जाता है, और स्वयं ऐसा का ऐसा बैठा-बैठा देखा करे परंतु कोई उस संयोग को रोक सकता नहीं। जाते हुए संयोग को रोक सकता नहीं, आते हुए संयोग को ला सकता नहीं, परंतु अभिमान करता है कि मेरे पुरुषार्थ से मैंने लक्ष्मी प्राप्त की, वह तो अभिमान है।

'मैं करूँ, मैं करूँ वह ही अज्ञानता, शकट का भार जैसे श्वान ताने, सृष्टि मंडाण एनी पेरे, कोई योगी योगीश्वरा जाने।' ऐसे उसे अभिमान हो गया है कि मैं हूँ तो यह सब होता है परंतु जो होता है उसका मैं जाननहार हूँ, होता है उसका जाननहार वह मैं, उसका करनेवाला मैं नहीं। ऐसा यदि उसे ममकार और अहंकार छूट जाये तो आत्मभान हो जाये। **आस्रव आकुलताके उत्पन्न करने वाले हैं इसलिए दुःख के कारण हैं**। यह सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा कही हुई बात है। संतों ने अनुभव करके ये शास्त्र लिखे हैं। भावलिंगी संत जंगलवासी नग्न दिगंबर मुनि थे। चौबीस घंटे में एक बार आहार लें। एक ही बार पानी लें, फिर पानी का एक बूंद भी जो इच्छते नहीं। एक सौ बीस डिग्री का ताप हो, गला सूखता हो, प्राण जायें अपितु पानी का (बूंद भी) लेने का जिन्हें विकल्प उठता नहीं। दिन के दौरान तो उन्हें नींद होती नहीं, रात्रि के अंतिम पहर में एक साथ नींद आये तो पौने सेकंड नींद होती है। एक सेकंड नींद आये तो मुनिपद चला जाये। ये पौने सेकंड से नींद बढ़ती नहीं, इतनी जागृत अवस्था है और आनंद के घूँट ऐसे भरते हैं कि उन्हें प्रमाद रहता नहीं। प्रमाद छूट जाता है। आनंद के स्वाद में और स्वाद में प्रमाद छूट जाता है। प्रमाद के ऊपर जिन्होंने विजय प्राप्त की है ऐसे मुनिराज ने शास्त्र लिखा है।

सुनो भव्य प्राणियों! तुम्हारे स्वरूप की ही मैं बात कहता हूँ। मैं विकथा नहीं कहूँगा, मैं आत्मकथा कहूँगा, धर्मकथा कहूँगा। आत्मा का, तुम्हारा क्या स्वरूप (है वह) तुम जानते नहीं हो। तुम्हारे स्वरूप को हम जानते हैं। तुम्हारे स्वरूप को तुम पहचानते नहीं। तुम कौन हो उसकी तुम्हें खबर नहीं है। परंतु तुम कौन हो वह हम जानते हैं। तो हमारे स्वरूप की खबर आपको कैसे हो गई? आप हमारे स्वरूप में तो प्रवेश करते नहीं और हमारा स्वरूप क्या है वह आपको कैसे पता चला? कि भाई हमें ऐसे पता चला कि हमारे शुद्धात्मा के हमने दर्शन किये तब हमें ऐसा भासित हुआ, भान हुआ, ज्ञान हुआ कि जैसा मेरा आत्मा है ऐसे जगत के सभी प्राणी भगवान हैं। हम सभी को भगवान के रूप में देखते हैं। हम किसके प्रति राग और किसके प्रति द्वेष करें? कौन मित्र और कौन शत्रु? ऐसी जिनकी वैराग्यवान दृष्टि प्रगट हो गई है।

ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग-द्वेष नहीं मन में (जिनेन्द्र अर्चना, पृ ३२९), ऐसे मुनिराजों ने ये शास्त्र अनुभव करके लिखे हैं। स्वयं कहते हैं कि प्रचुर आनंद का भोजन करनेवाले हैं। सम्यग्दृष्टि और श्रावक उन्हें आनंद का भोजन होता है परंतु प्रचुर नहीं, बहुत अधिक नहीं, मात्रा कम और सिद्ध परमात्मा सौ प्रतिशत मात्रा (में) आनंद का भोजन करते हैं। अरिहंत परमात्मा अभी विराजमान हैं। सीमंधर भगवान अभी महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् विराजमान हैं। बीस तीर्थंकर अभी विराजमान हैं। परंतु आज के युवानों को समय नहीं कि यह क्या है? क्या समझने जैसा है? क्या करने जैसा है? क्या नहीं करने जैसा है? व्यवहार में भी अभी कोई विवेक का ठिकाना नहीं। क्या खाद्य और क्या अखाद्य उसका भी अभी विवेक नहीं, वहाँ धर्म की बात तो कोई अपूर्व है। आहाहा!

दुःख के कारण को छोड़। दुःख के कारण का तू सेवन मत कर। यदि दुःख के कारण का सेवन करेगा, दुःख के कारण की रुचि रखेगा, पुण्य और पुण्य के फल की रुचि रखेगा तो वर्तमान में तो तू दुःखी है वह हम जानते हैं, मगर भाविकाल में भी दुःख आ पड़ेगा। यह मनुष्यभव तो मुश्किल से

किसी बार प्राप्त होता है। सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में ऐसा आया है कि एकेन्द्रिय जीव निगोद में से निकलकर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय उसे त्रस कहते हैं। एकेन्द्रिय को स्थावर कहते हैं, दो इन्द्रिय जीवों को (जिसको) दो इन्द्रिय का उघाड़ (है) उसे त्रस जीव कहते हैं। ऐसी त्रस राशि में जीव जब आता है तब उत्कृष्ट में उत्कृष्ट दो हजार सागर मात्र, वह त्रस में रहता है। और उसमें यदि आत्मभान करके मोक्ष हो गया तो छूट गया, और नहीं तो फिर से वह निगोद में चला जाता है। निगोद अर्थात् आलू और कंदमूल में रहे हुए जीव, जिन्हें जीवरूपसे कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं इतना उनका ज्ञान संकुचित हो जाता है। आत्मबल उनका संकुचित हो जाता है। वह बहुत दुःखी है। नारकी के दुःख की अपेक्षा से भी एकेन्द्रिय निगोद के जीव का दुःख अनंतगुना है। वह भोगे वह जाने और दूसरे सर्वज्ञ केवली जानें।

अतः यह एक मनुष्यभव मिला वह तो एक मौका है, काम कर लेने का एक अवसर आया है। यदि वह अवसर गया, वह अवसर चूक गया (तो) आँख मिंच जायेंगी और कहाँ फैंक दिया जायेगा कुछ पता नहीं लगेगा, खो जायेगा। इस लोक के अंदर वह कहाँ जाये कहाँ उसका पता लगे? जैसे एक सड़ा हुआ तिनका हो, तूफान आये और तिनका उड़े, अब वह तिनका कहाँ जाकर गिरेगा उसका कुछ पता नहीं।

ऐसे एक बार एक घटना घटी, राजकोट में गुरुदेव पधारे थे तब जेल के अंदर जो कैदी थे, उन कैदियों को पता चला कि सोनगढ़ के संत राजकोट में पधारे हैं। उन्होंने मिलकर विचार किया कि हमें संत के दर्शन करना हैं। इसलिए जेलर से अनुरोध किया कि हमें दर्शन करना हैं, आप जाकर अनुरोध करो। जेलर को भी करुणा आ गई कि भाई संत के दर्शन करते हों तो भले करें, ऐसे कोमल परिणाम उसे हुए। तो जेलर जैसे ही आता है गुरुदेव के पास, याचना करता है कि हमारे कैदियों की भावना हुई है आपके दर्शन करने की। (गुरुदेव ने) कहा हाँ खुशी से, कल सुबह आयेंगे। उस सुबह हम सब साथ में थे, वहाँ जेल के अंदर गये। उसमें खूनी और सब बहुत थे। जेल खुल्ली हों, खुल्ली जेल (थी) और अंदर में गये (और) सब उनके दर्शन करते हैं। ऐसा होने पर बाहर निकले, जेल के बाहर (वहाँ) दूसरी एक जेल की कोठरी थी, उसके अंदर एक बाईस साल का लड़का जिसने एक लड़की का खून किया था, स्त्री का, बाहर की कन्या का, और उसे फाँसी की सजा मिल गयी थी। तो वहाँ हम ऐसे गये तब वह खुला दरवाज़ा, एक सिर्फ़ चड्डी पहने था और वह बैठा था। उसके सामने जेलर ने कहा कि, कि देखो यह है न, इसे फाँसी की सजा मिल गई है। अब इसे कुछ खाना नहीं भाता है, पीना नहीं भाता है, इसे नींद नहीं आती है। फाँसी का हुकुम हो गया, तारीख निश्चित हो गई। हमें तो सिद्धांत में घटित करना है। फाँसी की तारीख निश्चित हो गई। उसे कुछ भी अनाज देते हैं तो मुँह में से वापस निकालता है। पानी पीता नहीं, सोता नहीं, ऐसी उसे देह के ऊपर ममता है न? मोहजन्य दुःख है न?

तब गुरुदेव ने कहा, आहाहा! वास्तव में तो सबको फाँसी का हुकुम तो हो गया है। सिर्फ़ तारीख का पता नहीं है। फाँसी अर्थात् मृत्यु, मरण अवश्य आनेवाला है। और आजकल तो छोटी उमर के भाइयों का भी मुंबई में हार्टफेल हो जाता है। मुंबई में तो आजकल बहुत घटना घटती हैं। अभी हम इंदौर गये थे तब टिकट मुंबई की air (हवाई जहाज) की ली थी। अपने मुमुक्षु भाई थे उन्होंने (कहा) मैं

कल टिकिट दे जाऊँगा, टिकिट ले ली है कल दे जाऊँगा। तो सुबह के पहर में उनका हार्टफेल हो गया। बावन, तिरपन वर्ष की आयु (थी)। अर्थात् कहने का आशय यह है कि प्रत्येक का हुकमनामा तो लिखा जा चुका है, सुनवाई बाकी है। सभी को, कोई तीस, कोई चालीस, कोई पन्नास, कोई साठ-सत्तर, ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष। आज के काल में average (औसत), सौ ऊपर तो कोई ही पहुँचता है, एक सौ पाँच, बाकी सौ के अंदर सब चले जाते हैं।

अतः यह एक मनुष्यभव मिला वह चिंतामणि रत्न मिला है। एक 'छहढाला' बनाई है दौलतरामजी ने। उन्होंने तो वहाँ तक कहा है, अरे निगोद में से त्रस राशि में आया, दो इन्द्रिय हुआ तो भी जैसे चिंतामणि रत्न प्रगट हुआ ऐसा मानना चाहिए। तो यह मनुष्यभव मिला और उसमें कुछ धर्म की बात सुनने का रस भी नहीं, प्रेम भी नहीं। क्या आत्मा? क्या धर्म? आहाहा! भव हार जायेगा। कोई शरण नहीं होगा, सभी घर के लोग खड़े-खड़े देखेंगे, खड़े-खड़े देखेंगे परंतु कोई उसे बचा नहीं सकेगा। डॉक्टर के पिता हों (तो) डॉक्टर स्वयं (भी) बचा नहीं सकता अपने पिता को, माँ-बाप को। कोई नहीं बचा सकता। कौन शरण है? एक आत्मा को आत्मा की शरण है। यदि उसकी पहचान हुई तो अल्पकाल में मुक्ति होगी। और यदि आत्मा की पहचान के बिना गया, आयुष्य पूरा हुआ तो चाहे कोई भी चार गति में वह दुःख को भोगेगा।

इसलिए आचार्य भगवान कहते हैं, फरमाते हैं, भाई! हम तेरे स्वरूप की बात कहते हैं, हम दूसरे की बात तुझे सुनाते नहीं हैं। तुझे तेरे स्वरूप की, तेरे आत्मा के स्वरूप की बात कहते हैं। तू शांति से सुन! तेरे हित के लिए कहते हैं। हमें हमारे लिए कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! नग्न दिगंबर मुनि उन्हें कुछ भी स्पृहा नहीं है। श्रीमद्‌जी तो वहाँ तक फरमाते हैं कि **वंदे चक्री तथापि न मळे मान जो** (अपूर्व अवसर, राजपद)। मुनिराज को चक्रवर्ती वंदन करते हैं, परंतु उन्हें मान की अपेक्षा नहीं है कि कोई हमें वंदन करे तो ठीक। आहाहा! वीतरागी संत वे तो आत्मध्यान में लीन और मस्त हैं, उन्हें तो पर के सामने देखने का भी उन्हें समय नहीं है। वे तो क्षण में और पल में अंदर में डुबकी लगाते हैं। ऐसे मुनिराज को जगत के जीवों के ऊपर करुणा आयी है, वे करुणा करके शास्त्र लिख गये हैं, कि तुम अपने स्वरूप को पहचानो, अपने स्वरूप को तुम अंतर ध्यान से लक्ष में लेकर अनुभव करो तो सुख का रस्ता अंदर में है।

वे कहते हैं कि **दुःखके कारण हैं** पुण्य और पाप के परिणाम दोनों (दुःख के कारण हैं)। ये पाप के परिणाम वे दुःख के कारण (हैं) परंतु पुण्य के परिणाम से तो सुख है या नहीं? कि बूंद भी सुख नहीं है, भ्रांति हुई है तुझे। **और भगवान आत्मा तो**, एक तरफ पुण्य और पाप के परिणाम और दूसरी तरफ भगवान आत्मा भी विद्यमान है। दो तत्त्व विद्यमान हैं। जीवतत्त्व भी है और पुण्य-पाप के परिणाम वे आस्रव तत्त्व भी हैं। दो तत्त्व हैं। दोनों में तुझे पसंद करना है। कि मैं कौन हूँ? मैं ज्ञानमय भगवान आत्मा हूँ या पुण्य-पाप के परिणाम मेरे हैं? मेरा क्या है? वह तुझे पसंद करना है।

भगवान आत्मा तो, सदा ही निराकुलता-स्वभावके कारण किसी का कार्य तथा किसी का कारण न होनेसे, क्या फरमाते हैं? कि पुण्य और पाप के परिणाम (को) दुःख का कारण कहा तब पुण्य-पाप से भिन्न अंदर में ज्ञानमयी आत्मा विराजमान है। ये **सदा ही**, तीनोंकाल, हमेशा के लिए,

निराकुलता अर्थात् अनाकुल आनंद के **स्वभावके कारण** कारण **किसी का कार्य तथा किसी का कारण न होनेसे,** कोई परपदार्थ आये तो आत्मा का कार्य हो और दूसरा कार्य हो उसमें आत्मा कारण हो ऐसा कार्य कारण के व्यवहार का तीनोंकाल अभाव है। आत्मा को धर्म हो उसमें पुण्य हो, पुण्य कारण हो और धर्म के परिणाम कार्य हों इसप्रकार किसी का कार्य हो ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा निरपेक्ष है। पुण्य के परिणाम की भी जिसे अपेक्षा नहीं है, ऐसा अंदर परमात्मा विराजमान है इसलिए पुण्य से भी धर्म हो वह पुण्य का कारण, पुण्य कारण हो और धर्म के परिणाम कार्य हों ऐसा कारण-कार्य संबंध पुण्य के साथ नहीं है। और आत्मा कारण होवे और पुण्य के परिणाम उसका कार्य होवें ऐसा कारण होने का भी स्वभाव नहीं और कार्य होने का भी स्वभाव नहीं।

अब ये नये शब्द जरा कठिन पड़ते हैं। कारण क्या और कार्य क्या? दुकान में दो सौ, तीन सौ चीजें हों वह याद रहे। पाँच सौ-पाँच सौ, हजार-हजार चीजें हों, वे मोटर के स्पेयर पार्ट्स होते हैं न? उसमें एक-एक हजार वस्तुएँ पड़ी हों, वे सभी याद रहती हैं। परंतु ये छह द्रव्य और नवतत्त्व ये याद नहीं रहते। क्यों याद नहीं रहते? रुचि नहीं है। रुचि नहीं है इसलिए वे याद नहीं रहते। परंतु परीक्षा देकर पास होना है, तो पूरी किताबें की किताबें मौखिक याद कर लेता है, क्योंकि उसमें पास होने की उसे रुचि है। और इसमें कुछ पैसे मिलते नहीं। अरे इसमें (क्या) मिले, तुझे खबर क्या पड़े? इसमें लक्ष्मी मिले। कौनसी लक्ष्मी? ज्ञानरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और अल्पकाल में उसके ये चार गति के जन्म, जरा और मरण उसके दुःखों से आत्मा छूट जाता है, ऐसा धर्म का लाभ होता है।

किसी का कार्य तथा किसी का कारण न होनेसे, आत्मा पुण्य का कारण होवें और पुण्य के परिणाम कार्य होवे ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। और पुण्य के परिणाम कारण होवें और आत्मा की अनुभूति कार्य हो ऐसा कारण-कार्य का संबंध - स्वभाव आत्मा में नहीं है। तू मान बैठा है। मान तो मान, परंतु वस्तु स्वरूप ऐसा, (जैसा) अज्ञानी मानता है वैसा वस्तु स्वरूप नहीं है। सर्वज्ञ भगवान कहते हैं और संतों ने (जैसा) अनुभव किया ऐसा आत्मा का स्वरूप है। साढ़े तीन और पाँच हो (गये), कब तक चलाना है? पाँच मिनट। हमें तो यहाँ टाइम (पर) है, बराबर टाइमसर, ढाई से साढ़े तीन तो ढाई से साढ़े तीन। यह तो जरा पाँच मिनिट देर हुई इसलिए, एक घंटा।

भगवान आत्मा तो, सदा ही, हमेशा, तीनोंकाल, **निराकुलता-स्वभावके कारण किसी का कार्य**, **तथा किसी का कारण न होनेसे,** तुझे पर के सामने नजर करने का काम क्या है? क्योंकि कोई पर पदार्थ तुझे धर्म का परमार्थ से कारण होता नहीं है; और कोई कार्य होवे, उसका कारण मैं नहीं हूँ। इसलिए तू अपने स्वभाव को संभाल। **दुःखका अकारण ही है**, दुःख का कारण आत्मा यदि हो, पुण्य-पाप के परिणाम का कारण यदि आत्मा हो तो आत्मा अनादि-अनंत है। पुण्य-पाप के परिणाम का कारण (यदि) आत्मा हो, ख्याल रखना! न्याय है। कि पुण्य और पाप के जो परिणाम होते हैं उसका कारण आत्मा हो तो आत्मा तो अनादि-अनंत है, तो पुण्य और पाप के परिणाम भी अनादि-अनंत होने चाहिए। परंतु अनादि-अनंत होते हुए पुण्य के परिणाम देखने में आते नहीं हैं। पुण्य और पाप के परिणाम का अभाव होकर परमात्म दशा प्रगट होती है। अतः पुण्य और पाप के परिणाम का कारण भगवान आत्मा नहीं है। यदि हो तो नित्य कर्तापने का दोष आये।

दुःखका अकारण ही है (अर्थात् दुःखका कारण नहीं)। यह भगवान आत्मा सुख स्वभावी आत्मा, वे पुण्य-पाप के परिणाम जो दुःखरूप हैं उनका कारण आत्मा में नहीं है। वे तो अज्ञान से पुण्य और पाप उत्पन्न होते हैं, स्वभाव से उत्पन्न नहीं होते। स्वभाव कारण नहीं है, अज्ञान कारण है। अज्ञान अर्थात् ये पुण्य और पाप के परिणाम मेरे हैं इसप्रकार राग में आत्मबुद्धि करना ऐसा अज्ञानभाव, अज्ञान की खान में से ये सभी भाव उत्पन्न होते हैं। **इस प्रकार विशेष (-अन्तर) को देखकर जब यह आत्मा, विशेष** अर्थात् **अन्तर** दो का। आत्मा और आस्रव का अन्तर, जुदाई, भिन्नता **देखकर जब यह आत्मा, आत्मा और आस्रवोंके**, यह आत्मा, ज्ञानमय आत्मा और पुण्य-पाप के परिणाम जो आस्रव मलिन भाव, जड़भाव, उनके **भेद को जानता है**, भेद अर्थात् जुदाई जानता है। **उसी समय** उस ही समय **क्रोधादि आस्रवोंसे निवृत होता है**।

क्योंकि उनसे जो निवृत नहीं है उसे आत्मा और आस्रवोंके पारमार्थिक (यथार्थ) भेदज्ञानकी सिद्धि ही नहीं हुई। केवल, मात्र बातें करे कि पुण्य-पाप के परिणाम भिन्न हैं और आत्मा भिन्न है, इसप्रकार मात्र बातें करे, ऐसे मात्र विकल्प उठाये उसमें कोई आस्रव की निवृत्ति नहीं होती है। परंतु दोनों को भिन्न करके, पुण्य-पाप का लक्ष छोड़कर, जब आत्मा आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करता है तब वह आस्रवों से निवर्त जाता है। अर्थात् दुःख के कारण छूट जाते हैं। पुण्य-पाप के परिणाम रह जाते हैं, थोड़े टाइम परंतु उनमें आत्मबुद्धि छूट जाती है, उनकी रुचि छूट जाती है। फिर पुण्य-पाप के परिणाम भी जैसे-जैसे स्वरूप में लीन होता है वैसे(-वैसे) पुण्य-पाप के परिणाम का भी (अभाव होता है)। पहले पाप के परिणाम का अभाव होता है। फिर अंत में पुण्य के परिणाम का भी अभाव होता है। और परिपूर्ण वीतराग दशा प्रगट होकर, अरिहंत पद की प्राप्ति करके तेरहवाँ गुणस्थान अरिहंत परमात्मा केवलज्ञान प्रगट करके, वह ही आत्मा अशरीरी होकर वह सिद्धगति-पंचमगति को प्राप्त करता है। आत्मा की पहचान करने जैसी है। आत्मा को पहचाने बिना कुछ (भी) धर्म की बिल्कुल शुरुआत होती नहीं। समय हो गया।

मुमुक्षुः धर्म अर्थात् क्या?

पू. लालचंदभाईः धर्म शब्द ऐसा है कि खास शब्द समझने जैसा है शब्द। प्रश्न अच्छा आया है कि धर्म अर्थात् क्या?

धर्म का पहले शब्दार्थ और फिर उसका भावार्थ। धर्म शब्द है उसका पहले शब्दार्थ क्या? धर्म शब्द का शब्दार्थ है, धर्म अर्थात् स्वभाव, स्वभाव को धर्म कहते हैं। धर्म अर्थात् स्वभाव, वस्तु का जो स्वभाव होता है उसे धर्म कहते हैं। **वत्थुसहावो धम्मो** (कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ४७६ अन्वयार्थ), वस्तु का जो स्वभाव होता है उसे धर्म कहते हैं। अब उसका एक दृष्टांत देता हूँ, फिर हमें आत्मा में घटित करना है। जैसे कि शक्कर है उसका स्वभाव मिठास, तो मिठास है वह शक्कर का स्वभाव है। स्वभाव होने से शक्कर का वह धर्म है, शक्कर का धर्म। स्वभाव को धर्म कहते हैं। अभी हमें आत्मा में घटित करना है। यह तो दृष्टांत है।

ऐसे ही नींबू है, उसका स्वभाव खटास (है)। तो खटास है वह नींबू का स्वभाव (है) इसलिए उस स्वभाव को नींबू का धर्म कहते हैं, नींबू का धर्म। स्वभाव को धर्म कहते हैं। अब यह तो दृष्टांत हुआ।

अब हमें घटित करना है आत्मा के ऊपर।

कि आत्मा है उसका स्वभाव क्या? कि उसका स्वभाव वीतरागता। वीतरागभाव प्रगट हो, वह आत्मा का स्वभाव है। और स्वभाव होने से वीतरागभाव को भगवान धर्म कहते हैं। **वत्थुसहावो धम्मो** वस्तु का जो स्वभाव होता है उसे धर्म कहते हैं। आत्मा एक वस्तु है, आत्मा में अनंत गुण बसते हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व (ऐसे) अनंत-अनंत गुणों से भरा हुआ अरूपी भगवान आत्मा है। उसका जो स्वभाव, जानना और देखना। आत्मा का ज्ञान, आत्मा का श्रद्धान और आत्मा का आचरण, चारित्र, ऐसे वीतरागी जो परिणाम प्रगट होते हैं वे आत्मा का स्वभाव हैं और स्वभाव होने से आत्मा का धर्म कहने में आते हैं।

पुण्य और पाप के परिणाम, वे आत्मा का स्वभाव नहीं हैं परंतु विभाव हैं, विकृतभाव हैं, कषाय के परिणाम हैं। अतः वे स्वभाव नहीं होने से उनको धर्म नहीं कहते परंतु स्वभाव से विरूद्ध उनको अधर्म कहने में आता है।

मुमुक्षु: पाप अर्थात् क्या?

पू. लालचंदभाई: पाप अर्थात् तीव्र कषाय के परिणाम। तीव्र कषाय के परिणाम अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी आदि के जो कषाय के परिणाम होते हैं उन्हें भगवान तीव्र कषाय कहते हैं। उन तीव्र कषाय के परिणाम को पाप के परिणाम कहने में आता है। और पुण्य के परिणाम, वह कषाय की मंदता जो होती है क्रोध की, मान की, माया की, लोभ की जो मंदता होती है, मंदता (को भगवान पुण्यतत्त्व कहते हैं)। तीव्र और मंद, तीव्र और मंद। ऐसी मंदता हो ऐसे आत्मा के विकृत परिणाम को, विभाव परिणाम को भगवान पुण्यतत्त्व कहते हैं। दोनों कषाय की जाति हैं। जाति दोनों एक ही हैं।

जैसे कि जहर है, जहर। कुछ जहर ऐसे होते हैं कि जैसे ही खायें वैसे तुरंत ही मर जायें, और कुछ जहर ऐसा होता है कि घंटे, दो घंटे के बाद मरें। उसकी मात्रा में थोड़ा अंतर, परंतु वह मृत्यु को प्राप्त करता है। ऐसे ही पुण्य और पाप के परिणाम दोनों कषाय की जाति हैं। आत्मा के स्वभाव की जाति के वे परिणाम नहीं हैं। आत्मा के स्वभाव से विरूद्ध भाव हैं वे। अतः वे पाप के परिणाम कषाय की तीव्रता और पुण्य के परिणाम वे कषाय की मंदता। शुभभाव को पुण्य कहते हैं, अशुभभाव को पाप कहते हैं। खाना, पीना, कमाना, उपार्जन करना, ये सब पाप के परिणाम हैं। दुकान में जाना, व्यापार करना वे सब पाप के परिणाम हैं। दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम, आत्मा का विचार करना, स्वाध्याय करना, तत्त्व का विचार करना, वे पुण्य के परिणाम हैं।

मुमुक्षु: व्यापार करना वह भी पाप का परिणाम है?

पू. लालचंदभाई: हाँ, भाई! पाप का परिणाम है, बापू। बापू, पाप के परिणाम हैं। भाई, बात सच्ची है। परंतु गृहस्थों को व्यापार का विकल्प उठता तो है। गृहस्थ जीवन में व्यापार का विकल्प उठता है, वह कहीं हाथ लंबा करने नहीं जाता। इसलिए गृहस्थ जीवन में इतने पाप के परिणाम आते तो हैं, परंतु उन परिणामों की जाति क्या है वह तो समझनी पड़ेगी न हमें? उसकी जाति। पाप के परिणाम छूटते नहीं, गृहस्थ को ऐसे पाप के परिणाम अभी उसकी कमजोरी से छूटते नहीं हैं, परंतु उसे उनका स्वरूप तो देखना पड़े ना? कि ये पाप के परिणाम हैं, ये धर्म के परिणाम नहीं हैं। दुकान

पर जाकर व्यापार करना वे पुण्य के परिणाम नहीं, पाप के परिणाम हैं। वह दुकान छोड़कर अथवा तो दुकान पर बैठा हो और ग्राहक न हो और नवतत्त्व का विचार करे, आत्मा का विचार करे, तो उस समय उसे पुण्य के परिणाम हैं। ये कोई आठ घंटे पाप के परिणाम नहीं हैं। परिणाम का समय-समय का हिसाब है।

एक-एक समय के परिणाम का हिसाब है, सर्वज्ञ भगवान की कोर्ट में। एक-एक समय के परिणाम। ऐसे जहाँ ग्राहक आया, उसे समझाता है वहाँ वे पाप के परिणाम। ग्राहक चला गया, अरे! मैं तो एक ज्ञानमय आत्मा हूँ, मैं तो एक जाननहार-देखनहार हूँ, यह दुकान भी मेरी नहीं है, और यह पैसा भी मेरा नहीं है - ऐसा विचार आ जाये दुकान पर बैठे, गद्दी के ऊपर, कुर्सी के ऊपर तो उसे पुण्य का परिणाम कहते हैं। और उस दुकान की कुर्सी के ऊपर बैठकर, वह पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न मेरा आत्मा है, ऐसे अंदर लक्ष करके यदि आत्मा में डुबकी मारे, तो वे धर्म के परिणाम वहाँ प्रगट हों वहाँ उस स्थान पर, मंदिर में जाने की जरूरत न पड़े, वहाँ दुकान पर बैठे-बैठे (धर्म के परिणाम प्रगट होवें)।

मुमुक्षु: यह आप सब वीतराग की बातें करते हो परंतु मुझे पता नहीं चलता आप क्या कहना चाहते हो? परंतु आपके पास कोई फैक्टरी या कुछ हो और दो सौ, तीन सौ लोगों को आपने नौकरी पर रखा हो, उन लोगों को आप वेतन देते हो इसलिए तो उनका गुजारा चलता है, तो उसे पुण्य कहना या पाप कहना? व्यापार एक तरफ पाप कहलाये, परंतु यह पुण्य कहलाये या पाप कहलाये?

पू. लालचंदभाई: देखो! हाँ, भले! प्रश्न हो गया। बराबर है। देखो! वह उनके ऊपर दया करके पैसे नहीं देता, उनसे काम निकलवाकर पैसा कमाना है। उसका आशय यह है इसलिए पाप का परिणाम है। हाँ, फैक्टरी बंद करके और फिर तुम महीने का राशन उसके घर भेजो, दया के लिए, तो वह पुण्य है। वो तो तुम पाँचसौ (रूपये) पगार दो और तुमको हजार का काम कराना (है ऐसा) तुम्हारा आशय (है)। आशय के ऊपर (आधारित) है।

मुमुक्षु: ये बात आपकी सही है परंतु दुनिया में सब फैक्टरी वाले मालिक हैं सब इस प्रकार विचार करें कि वो पाप कहलाये तो फिर पूरी दुनिया की जनसंख्या करेगी क्या?

पू. लालचंदभाई: भाई! (बात) ऐसी है कि कोई-कोई जीव अपने स्वरूप को समझकर और बाहर निकल जाता है। सभी जीव एक साथ समझने की योग्यतावाले किसी काल में नहीं आयेंगे। (ऐसा) कोई काल नहीं आयेगा कि सभी जीव एक साथ समझ जायें लाखों, करोड़ों, अरबों और एक साथ मोक्ष में चले जायें ऐसा कोई काल आनेवाला नहीं है। इसलिए संसार ऐसे के ऐसे चलनेवाला है। संसार की तुम चिंता मत करो, संसार संसार के कारण से चलता है। हमें मात्र अपनी एक आत्म-साधना करके और हमें इस संसार में से छूटने जैसा है। हम दूसरे को कुछ समझा सकें ऐसी अपने में शक्ति नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता नहीं। मात्र स्वयं स्वयं के स्वरूप को समझकर और बाहर निकल जाये तो वह बच जाये ऐसा है।

बाकी तो यह संसार किसी दिन (रुकनेवाला नहीं है)। तुम चिंता मत करो कि यह संसार रुकनेवाला (है)। अनादि-अनंत संसार है। उसमें मात्र थोड़े जीव, कोई विरले, कोई विरले अपनी आत्म-

साधना करके और संसार के बाहर निकल जाते हैं, तिर जाते हैं। समुद्र से पार चले जाते हैं। अरे! संसार तो अनादि-अनंत चलनेवाला है, कहीं अटकनेवाला नहीं है, किसी दिन संसार बंद नहीं होता। हमारे बाप-दादा कर्ताबुद्धि रखकर चले गये। अब बाप-दादा (तो) चले गये बाद में यह संसार चलता है या बंद हो गया? चलता है न? हें? ऐसे हम इसमें से निकल जायें, हम इसमें से निकल जायें। अपना मोक्ष हो जाये आत्म साधना से तो यह सब अटक जानेवाला है? चलनेवाला ही है। जड़ और चेतन के परिणाम समय-समय पर, परिणाम स्वभावी होने से हुआ ही करते हैं। बोलो। बोलो, बोलो कोई बात नहीं।

मुमुक्षु: पैसे से सुख नहीं मिलता वह तो सब जानते हैं। (मगर) पैसे बगैर चलता भी नहीं है; उसमें मुझे समझ नहीं आता। पैसे से सुख मिलता नहीं है, पैसा साथ भी नहीं आता फिर भी पैसा प्राप्त करने के लिए सब करते हैं।

पू. लालचंदभाई: वह जो पैसा प्राप्त करने का (जो) लोभ होता है न? वह लोभभाव वह पापभाव है। अब पैसे से ही यदि जीवन जिया जाता हो तो इन कौए और कबूतर के पास एक पैसा बैंक बेलेन्स नहीं है और जीते हैं या नहीं? यह तो समझने जैसी (बात) है। यह टीका टिप्पणी की बात नहीं है। यह तो एक स्वरूप समझने जैसा है। जो अपनी मान्यता है कि परपदार्थ हो तो मेरा जीवन है, परंतु परपदार्थ के बिना भी जीवन जीनेवाले अनंत जीव हैं, जिनके पास कोई पैसा नहीं है, मकान नहीं है, कोई मोटर नहीं है, बंगला नहीं है।

मुमुक्षु: पाँच मिनिट हैं। हम चलते हैं तो जीव-जन्तु मरते होंगे तो भी हमें चलना तो पड़ता है। तो उसमें भी पाप है?

पू. लालचंदभाई: देखो भाई! जितनी असावधानदशा से चलता है, असावधानदशा, इतना तो उसे दोष लगता ही है। दोष तो दोष ही है, असावधानदशा। परंतु यदि नीचे देखकर चले जरा सावधानी से कि कोई जीव मरे नहीं, इतनी सावधानी से चले, ध्यान रखकर, तो उसे पुण्यतत्त्व हो। उसे धर्म नहीं होता अपितु शुभभाव, पुण्य बंधता है। जीव-जन्तु ऐसे चले जाते हों तो हम ऐसे जरा देखकर चलें तो वे बच जायें। बचता तो है अपने कारण से, परंतु हम थोड़ी सी सावधानी रखें, ऐसे ऊँचा देखकर न चलते (जायें), और नीचे देखकर चलें तो इतने जीव बचें तो उनको करुणा के भाव कहते हैं, उनको शुभभाव कहते हैं। देखकर चलना चाहिए। कोई जीव मरे वह कर्तव्य नहीं है। बन सके उतनी सावधानी गृहस्थ अवस्था में रखनी चाहिए। बाकी गृहस्थ अवस्था में पाप के भाव तो (होते हैं), ऐसी ही उसकी चर्या, दिनचर्या है।

मुमुक्षु: आत्मा में सब (ज्ञानी) सुख दिखाते हैं, और वहाँ ढूँढो तो मिलेगा, परंतु किस प्रकार ढूँढना..?

पू. लालचंदभाई: बराबर है। वह मुद्दे का प्रश्न है। कि सभी ज्ञानी धर्मात्मा कह गये कि तुम्हारा सुख तुम्हारी आत्मा में है और वहाँ ढूँढो तो तुम्हें मिलेगा। बराबर न? ऐसा कहते हैं। परंतु उसकी खोज कैसे करना? ऐसा प्रश्न है न? कि यदि हमारे अंदर में सुख हो तो प्राप्त करना है परंतु किस प्रकार खोजना? तो ज्ञानी फरमाते हैं कि तुम्हारी परिणति, तुम्हारा उपयोग बाहर जाता है न? ऐसे बाहर, बाहर

देखते हो न तुम? तुम्हारा उपयोग अर्थात् ज्ञान का व्यापार निरंतर बाहर जाता है न? यह है और यह है और यह है, जानने में जाता है न ज्ञान उपयोग बाहर? तो जानते तो आता है। आत्मा को जानने का काम तो आता है। बराबर न?

अब पर को जानता है वह ज्ञान अंदर में मुड़कर आत्मा को जाने, तो आत्मा का अनुभव हो। तुम्हें जानते तो आता है न? यह पदार्थ खट्टा है, मीठा है, यह लंबा है, छोटा है, सफेद है, यह मकान है, बंगला (है), जानने का काम तो तुम करते ही हो निरंतर। ज्ञान बिना का आत्मा नहीं होता। आत्मा यदि ज्ञान बिना का हो तो जड़ हो जाये। अब जो बहिर्मुख परपदार्थ को जानने जाता है उसकी बजाय उस इन्द्रियज्ञान के व्यापार को रोककर, वह अपने ज्ञान को अंदर में मोड़े, जिसका ज्ञान जहाँ से आता है ... ज्ञान कहाँ से आता है? ज्ञान तो आत्मा में से आता है। ज्ञान ज्ञेय में से नहीं आता। यह दिवाल है सामने, उस दिवाल का ज्ञान तुम्हें हुआ अभी, तो वह ज्ञान दिवाल में से आता है या ज्ञान आत्मा में से आया? तुम्हें भ्रांति हो गई है कि लालुभाई के सामने मैं देखूँ तो लालुभाई का ज्ञान हो। वह ज्ञान तुम्हारे आत्मा में से आया है। वह ज्ञान जहाँ से आता है, उस ज्ञान को अंदर में जाकर पकड़े तो उसे सुख की प्राप्ति हो। ऐसी वस्तु है। थोड़ा अभ्यास जरूरी है। सूक्ष्म बात है। बात सुनने को मिले नहीं। हाँ, पुंजाभाई और हरखचंदभाई! हाँ, ठीक-ठीक अच्छा। मैं नैरोबी गया था, पाँच वर्ष पहले।